

बच्चे और पारम्परिक खिलौने

□ कमलेश चन्द्र जोशी

बच्चे और खिलौनों का संबंध सदैव से ही रहा है। हम यह भी कह सकते हैं कि सबसे पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति हुई है, तब से खिलौनों का प्रचलन भी शुरू हो गया होगा। हाँ, यह शोध का विषय है कि उस समय के खिलौनों का रूप क्या रहा होगा? उनमें किस तरह का विकास होता रहा होगा? इसके अलावा हम यह भी कह सकते हैं कि खिलौनों के बिना हम बच्चों की दुनिया की कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारे लिए यह भी समझने की बात है कि बच्चे बहुत सारी चीजों को अपने ढंग से खिलौनों का रूप

दे लेते हैं और वे उनसे खेलते हैं। चाहें वे टूटे-फूटे डिब्बे हों या इसी तरह की अन्य सामग्री। यहां यह भी जानने की बात है कि बच्चों की शैशव अवस्था (4-5 महीने) से ही हम उन्हें चुपाने/खिलाने के लिए तमाम तरह की चीजों से तरह-तरह की ध्वनि निकाल कर उनका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करते हैं। धीरे-धीरे आगे चल कर हम पाते हैं कि बच्चे खिलौनों से खेलते हुए खुद भी चीजों को जोड़-तोड़ कर खिलौनों का निर्माण करते हुए अपनी रचनात्मक ऊर्जा का उपयोग करते हैं। इसलिए हमारे लिए यह

जरूरी हो जाता है कि बच्चों की रचनात्मक उर्जा को उभारने के लिए हम उन्हें भरपूर मौके दें ।

बच्चे और खिलौनों का संबंध उनके आसपास का परिवेश तथा उनके द्वारा खिलौने बनाने की प्रक्रिया आदि चीजों पर हम गौर करें तो हमें बच्चों के व्यक्तित्व विकास संबंधी पहलुओं पर तमाम जानकारी मिलती है । इसके अलावा हमें यह भी समझने को मिलता है कि बच्चे इन सारी प्रक्रियाओं में क्या-क्या सीखते हैं ? बच्चों के सहज ढंग से सीखने की प्रक्रिया से हमारी यह समझ प्रौढ़ होती है कि बच्चे वास्तव में कैसे सीखते हैं ?

पहले हम गौर करें कि बच्चे अपने रोजमर्रा के जीवन में क्या-क्या चीजें बनाते हैं ? इसके लिए पहले हम अपने अतीत में चलें और अपने छुटपन की दुनिया पर गौर करें । तो हम पाते हैं कि माचिस के खाली डिब्बों को बिल्कुल सरल तरीके से जोड़कर रेलगाड़ी का रूप देना या खाली सिगरेट की डिब्बी को पिस्तौल की शकल देना, इसके अलावा कागज से बनायी जाने वाली ढेरों चीजें जैसे - नाव, हवाई जहाज, तितली, नाग आदि हमें याद हो आते हैं । इसके अलावा हमारे गांवों में मिट्टी से बहुत सारे खिलौने बनाये जाते थे जिन्हें अक्सर बड़े लोग ही बनाते थे। धीरे-धीरे उनका प्रचलन अब समाप्त हो रहा है । लेकिन दूर-दराज के इलाकों में यह अब भी प्रचलित हैं। इन खिलौनों को बिकते हुए आज भी गावों-कस्बों के स्थानीय मेलों में देखा जा सकता है । इनके बारे में सोचते हुये हमें प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' की याद आती है । इन मिट्टी के खिलौनों की खास बात यह है कि उनसे खेलो और टूट गये तो टूटने का कोई गम नहीं । हमें ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के खेलने के दौरान खेल की सामग्री में टूट फूट तो होती ही है । लेकिन हमारी सदैव चिन्ता रहती है कि बच्चे अपने खिलौनों से खेलें नहीं, केवल उन्हें शो पीस बनाकर रखें ।

अब इन मिट्टी के खिलौनों को बनाने की प्रक्रिया पर गौर करें। हालांकि आजकल हमारे प्राथमिक विद्यालयों में इस कार्य पर कोई बल नहीं दिया जाता है । न ही पहले हमारे समय में दिया जाता था। केवल नाम मात्र के लिए तीसरी, चौथी, पांचवी कक्षा के छमाही व सालाना की परीक्षाओं में हम इन्हें अपने पड़ोस की

चाची दादी से बनवा लेते थे । बनवाते भी क्या थे ? कुछ फल जैसे - केला, खरबूजा, आम आदि । कुछ सब्जियां जैसे भिन्डी, मिर्ची, बैंगन आदि । इन चीजों के अलावा हमारे पास कोई अन्य चीजों का विकल्प नहीं था। क्योंकि इस कार्य पर विद्यालय में कोई बल नहीं था । धीरे-धीरे हमारे मन में यह बात बैठ गई कि हम जल्दी से जल्दी पांचवी कक्षा पास करें तो इनसे बवाला छूटे। कहने

का मतलब यह है कि इन चीजों को बनाने-बनवाने में हमारे शिक्षकों को कोई रूचि नहीं थी। अन्य किसी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता । हां, यह जरूर याद पड़ता है कि कुछ साथियों का इस कार्य में बहुत मन लगता था । इसे हम स्कूल की छमाही वार्षिक परीक्षा वाले दिन देख पाते थे । तब उस दिन एक उत्सुकता बनती थी कि कुछ हम भी सीखें । लेकिन उस परीक्षा के बाद फिर छह महीने इस काम से छुट्टी । इसलिए यह उत्सुकता ज्यादा देर तक नहीं टिक पाती थी। लेकिन अब मुझे लगता है कि छोटे बच्चों के हाथों व उंगलियों के कुशल संचालन के लिए यह कार्य काफी जरूरी है । यह कार्य बच्चों को स्वतः करके सीखने का एक अनुभव भी देता है। उनकी इंद्रियों के विकास के लिए तो यह जरूरी है ही । इन खिलौनों के निर्माण

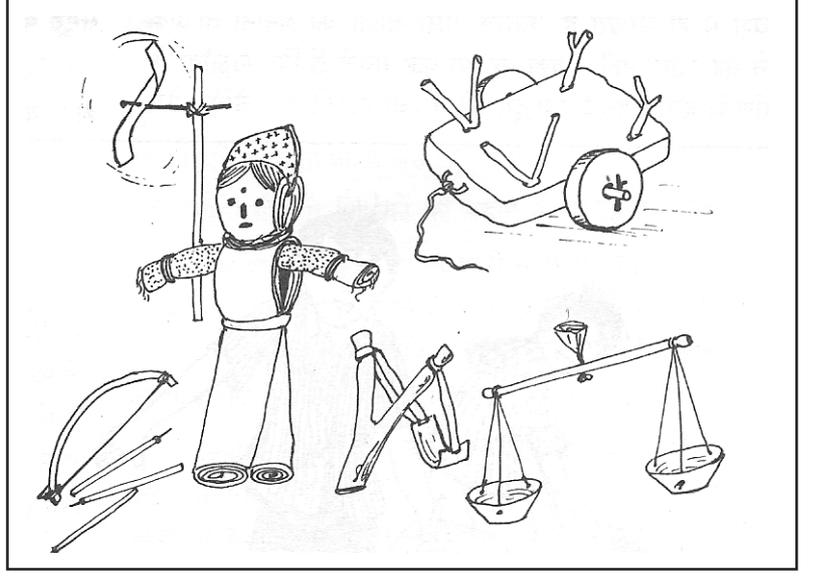
इन खिलौनों के निर्माण में बच्चे खुद करते हुए चीजों को महसूस करते हैं और निर्जीव मिट्टी को आकार देते हुये उसमें प्राण फूंकते हैं । इस कार्य में रचनात्मकता तो स्वाभाविक रूप से छिपी हुयी है क्योंकि बच्चे अपनी कल्पना को मूर्तरूप दे रहे हैं । छोटी कक्षाओं में यह इसलिए जरूरी लगता है कि इन खिलौनों में रंग भरकर बच्चे तमाम डिजाइन बनाते हैं और बच्चे अपने स्वयं के रंगों का चुनाव करते हैं । इस प्रक्रिया से उनमें एक सौन्दर्य बोध भी जन्म लेता है ।

में बच्चे खुद करते हुए चीजों को महसूस करते हैं और निर्जीव मिट्टी को आकार देते हुये उसमें प्राण फूंकते हैं । इस कार्य में रचनात्मकता तो स्वाभाविक रूप से छिपी हुयी है क्योंकि बच्चे अपनी कल्पना को मूर्तरूप दे रहे हैं । छोटी कक्षाओं में यह इसलिए जरूरी लगता है कि इन खिलौनों में रंग भरकर बच्चे तमाम डिजाइन बनाते हैं और बच्चे अपने स्वयं के रंगों का चुनाव करते हैं । इस प्रक्रिया से उनमें एक सौन्दर्य बोध भी जन्म लेता है ।

मिट्टी के खिलौनों के बाद अब हम अन्य खिलौनों पर गौर करें जिनको बनाने में बच्चे स्वयं चीजों का जुगाड़ करते हैं । इसके लिए हम अपने बचपन को याद करते हैं कि बचपन में हम खाली पालिश की डिब्बी ढूंढा करते थे । उसे कील के द्वारा एक ब्याहा के डंडे में ठोंककर गाड़ी बनाते थे । गाड़ी बनाने के बाद उसे चलाते थे । और उसे चलाने का असली मजा पानी-कीचड़ व उबड़-खाबड़ जगहों पर ही ज्यादा था । इसे चलाते हुए एक बात और नोट करने की थी कि हमारा ध्यान उसी समय एकाग्र ज्यादा रहता था

क्योंकि उसको चलाते हुए हम तमाम दूसरी बातों को सोचते थे। यहां पर समझ में आती है कि हमारे मस्तिष्क की एकाग्रता कई तरह से होती है जैसे मैंने देखा है कि लोग कान में वाकमैन लगाए गाना सुनते हुये लिखने का गंभीर काम भी आसानी से करते हैं। लेकिन इसके विपरीत कुछ लोगों को सोचने के लिए बिल्कुल एकान्त जगह चाहिये। कुल मिलाकर यहां पर कहना यह है कि इस बारे में कोई अंतिम निर्णय नहीं है कि हम सब कब सीखते हैं? कब हम सहज भाव से काम कर पाते हैं?

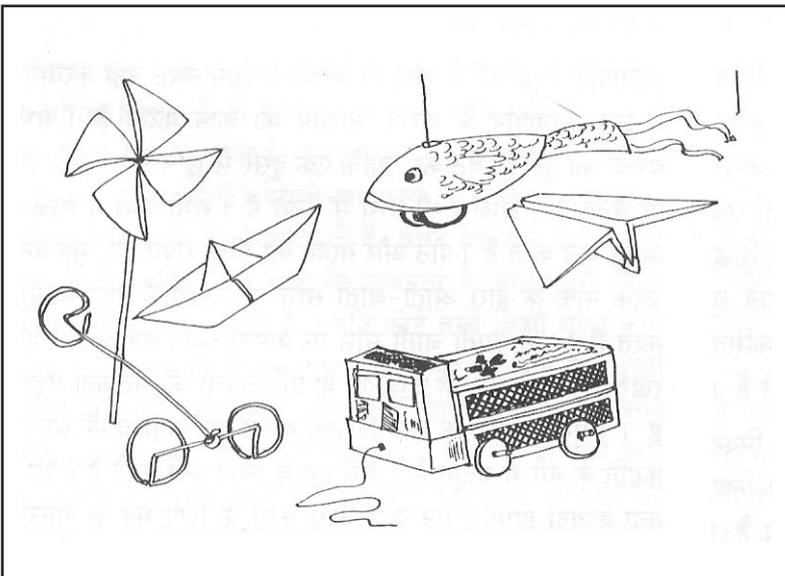
इसके बाद हम फिर पालिश की डिबिया वाली गाड़ी पर लौटते हैं। इस गाड़ी को बनाने के लिए सारी चीजें हम जुटाते थे। इसके बाद इनको बनाते भी हम खुद थे। अगर सही नहीं बनती थी तो अपने हमउम्र बच्चों की मदद भी लेते थे। अब समझें कि इस बनाने की प्रक्रिया में सीखना क्या है? उसे भी समझें। सबसे पहले हमें यह सोचना पड़ता था कि खाली पालिश की डिब्बी कहां से मिल सकती थी? इसके बाद कील का जुगाड़ करना पड़ता था। फिर ब्याहा के डंडे को तोड़ कर लाना पड़ता था। इसके बाद हमें यह ध्यान देना होता कि कील पहिये की बीच में ठोकी जानी चाहिये। दूसरी बात यह कि कील को डंडी में ठोकते हुए यह ध्यान में रखना पड़ता था कि इसे ऐसे ठोकना है कि पहिये को घूमने में आसानी हो। इसलिए ज्यादा ऊपर नीचे नहीं होना चाहिए। अब इस प्रक्रिया में ऊपर से देखने में तो बहुत कुछ मानसिक क्रिया बच्चों के लिए रोचक और मजेदार भी है। यह मानसिक क्रिया



बच्चों को एक आनन्द देती है। इस आनन्द को बच्चे ही महसूस कर सकते हैं। जब यह गाड़ी तैयार होती थी तो हम बच्चों के चेहरे की खुशी देखने लायक होती थी। यह बिल्कुल उसी तरह होता है जब हम काफी खोजबीन के बाद किसी समस्या/पहेली का हल ढूँढ लेते हैं। इसे ही हम रुचिपूर्ण शिक्षा/सीखने का आनन्द कहते हैं। हालांकि उक्त प्रक्रिया बहुत सहज लगती है वह इसलिए कि इसे बनाने का अभ्यास हम इतनी बार कर चुके होते हैं कि हम इसे तुरन्त बना लेते हैं। हां, अगर थोड़ा गहराई में जाये तो हमें इसे बनाने के अनुभव को जानना पड़ेगा जो कि आज याद कर पाना हमारे लिए थोड़ा मुश्किल काम है।

खैर, गाड़ी बनाने की प्रक्रिया पर वापस आयें तो हमें पता चलता है कि बच्चों की गाड़ी में प्रयुक्त सारी सामग्री का हमें मन ही मन अंदाजा लेना पड़ता था। यह भी एक तरह की मानसिक गणित की क्रिया थी। कभी-कभी इसे बनाते हुए हम गलत भी होते तो उसे खुद ठीक भी करते थे। काफी प्रयासों के बाद अगर असफल भी रहते तो अपने से बड़ों की भी मदद लेते। इस खिलौने निर्माण की प्रक्रिया में हम बारीकी से गौर करें तो हम पाते हैं कि इसमें गौण रूप से विज्ञान व तकनीक भी छिपी हुई है। इस प्रक्रिया के बारे में जब हम आज सोचते हैं तो हमें लगता है कि हमारे प्राथमिक विद्यालयों में होने वाली मौखिक/मानसिक गणित की परीक्षा में क्या ऐसे क्रियाकलापों को नहीं जोड़ा जा सकता है?

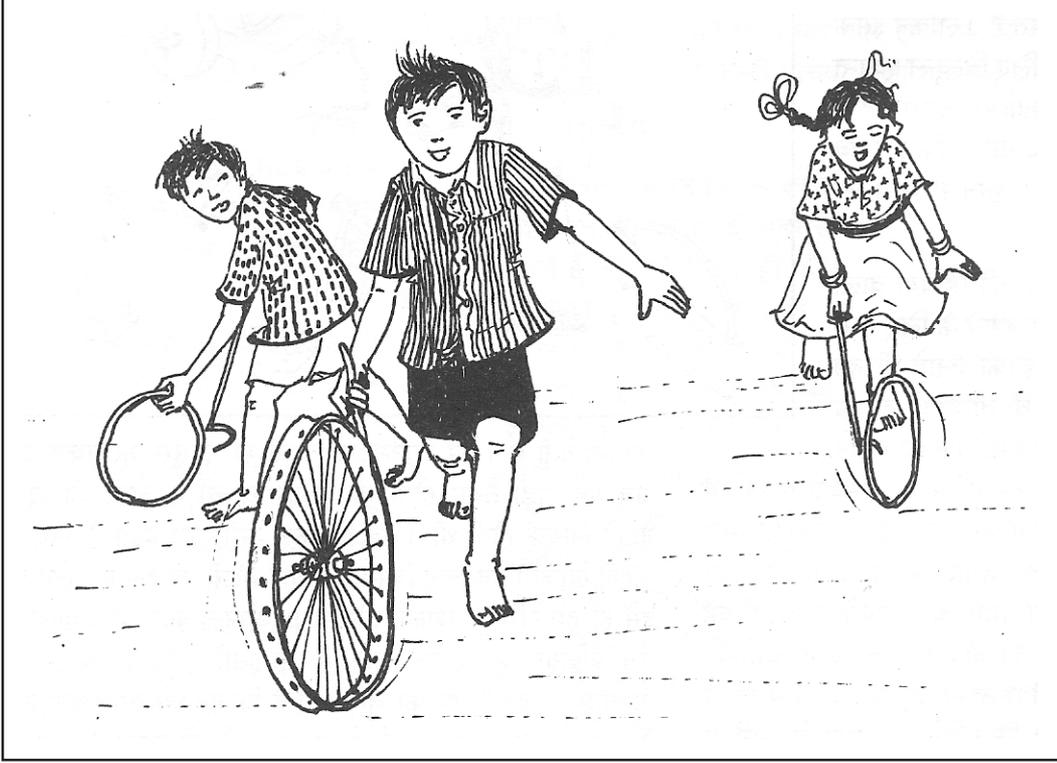
इसी तरह से कागज द्वारा बनाये जाने वाली तमाम चीजें बच्चे अपने आसपास के मित्रों से व



परिवेश में ही सीखते हैं क्योंकि सारी चीजों को बनाना तो एक बच्चे को आता नहीं । यहां पर हम कह सकते हैं कि खिलौनों के निर्माण के दौरान बच्चे एक दूसरे से बखूबी सीखते हैं । लेकिन ऐसे

समूह कार्य का हमारे विद्यालयों में कोई स्थान नहीं है ।

अब अन्त में इन सब चीजों में सहज रीति से सीखना तो है ही । यह प्रक्रिया बच्चों के व्यक्तित्व विकास का अभिन्न अंग है ।



लेकिन इसे हमारे विद्यालय के पाठ्यक्रम में कितनी जगह मिलती है? इसका उत्तर यही मिलता है कि यह सब चीजें गौण समझी जाती हैं। यहां पर हमें यह महसूस होता है कि हमारे विद्यालय अभी भी इस मानसिकता से ग्रसित है कि बच्चों के लिए किताब, तथ्य, अवधारणायें ही ज्यादा जरूरी है । उनके लिए कौशल गौण है । इसमें विद्यालय की प्रणाली को दोष दें तो लगता है कि व्यवस्था ही गड़बड़ है। अब आप ही सोचें कि बच्चों के लिए बुनियादी बल किन किन चीजों पर हो ? ◆